विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ

1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

अनुश्रुतियों में भर्तृहरि व विक्रमादित्य
डॉ. धीरेन्द्र सोलंकी
अनिमेष नागर

पृष्ठ क्र. 3-4

विक्रमकालीन मालवा की भौगोलिक स्थिति
डॉ. मुकेश कुमार शाह

पृष्ठ क्र. 5-6

वैदिक सौंदर्य एवं दार्शनिक व्याख्या
ईशान अवस्थी

पृष्ठ क्र. 7

गंधर्वपुरी की किवदंतियों में गंधर्वसेन
नरेश कुमार पाठक

पृष्ठ क्र. 8

महाराजा विक्रमादित्य सीनियर एवं जूनियर फैलोशिप की जानकारी

अनुश्रुतियों में भर्तृहरि व विक्रमादित्य

डॉ. धीरेन्द्र सोलंकी एवं अनिमेष नागर

भारतीय जनमानस के स्मृति पटल को भर्तृहरि एवं विक्रमादित्य ने गहनरूप से प्रभावित किया है। भारतीय उपमहाद्वीप पर विद्यमान विभिन्न संस्कृतियों में उभय भ्राताओं की गौरवगाथा को अविस्मरणीय स्थान प्राप्त है। भारत के प्रत्येक राज्य में विक्रमादित्य एवं भर्तृहरि के कथानक को अपने-अपने क्षेत्राचार एवं संस्कृति के अनुरूप दाल कर प्रस्तुत किया गया है। भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक चरित्र के कारण एक-दूसरे को बाधित करती हुई अनुश्रुतियाँ, एक ही कालखण्ड में घटित हुई समान घटनाएँ एक-साथ निर्विरोध रूप से अपने-अपने क्षेत्र में दोनों प्राताओं के यश को गुंजायमान करती है। कश्मीर से लेकर केरल पर्यन्त उज्जयिनी के राजा भर्तृहरि एवं उनके अनुज विक्रमादित्य के जीवन से जुड़े अनेक कथानक, अनुश्रुतियाँ एवं लोकोक्तियाँ प्राप्त होती है। उत्तम काव्य एवं केसर की भूमि कश्मीर में उत्पन्न हुए कल्हण अपनी राजतरंगिणी के तृतीय तरंग में सम्राट विक्रमादित्य से सम्बन्धित एक आख्यान का उल्लेख करते हैं। जिस समय राजा हिरण्य के निधन के कारण कश्मीर की भूमि नृपति विहिन हो गई उस काल में उज्जयिनी में एकछत्र चक्रवर्ती विक्रमादित्य का शासन था। महाराजा विक्रमादित्य साक्षात विष्णु के समान थे, जो राज्यलक्ष्मी के परीपालन में नीरत थे। उनके द्वारा मलेच्छ शकों का विनाश ठीक उसी प्रकार किया गया जिस प्रकार नारायण अवतार ग्रहण कर असुर राक्षसों का करते थे। दिग-दिग्न्तर में उनकी ख्याती के विषय में सुनकर मातृगुप्त नामक काश्मीर ब्राह्मण कवि उनके पास भेंट करने पहुँचा।

सम्राट को कश्मीर की वस्तुस्थित ज्ञात थी अतः मातृगुप्त के गुणों तथा बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर उसे अपने हस्ताक्षरों से युक्त एक पत्र व कुछ द्रव्य देकर कश्मीर भेजा। यह पत्र कश्मीर के मन्त्रियों तथा कुलीनों के नाम था। उसे आदेश दिया गया की वह उज्जैन से कश्मीर की यात्रा अकेले करें। पत्र में लिखा था- मातृगुप्त को योग्यता के कारण कश्मीर का राजा नियुक्त किया जाये, राजसिंहासन का रिक्त रहना राजपुरूषों के लिए समुचित नहीं हैं। कश्मीर के मन्त्रियों तथा कुलीनों ने पत्र पर विचार करने के लिए परिषद् बुलायी। अन्त में यह निर्णय किया गया कि महाराजाधिराज विक्रमादित्य का आदेश सर्वथा पालनीय है अतः मातृगुप्त को कश्मीर के सिंहासन पर अभिषिक्त किया जायें। सम्राट विक्रमादित्य के अनुग्रह से मातृगुप्त ने पाँच वर्ष तीन मास तथा एक दिन तक कश्मीर पर शासन किया। इस आख्यान से हमें सम्राट विक्रमादित्य की गुणग्राहयता, दूरदर्शिता एवं धर्मनिष्ठा का बोध प्राप्त होता है। विक्रमादित्य के सहस्रवर्ष पश्चात् कुमारपाल नाम का राजा होगा जो गुण एवं पराक्रम में उन्हीं के समान होगा। कुछ शब्दान्तरों के साथ यह आख्यान सोमदेवसुरिकृत कुमारपालचरित्रम में भी प्राप्त होता हैं। उज्जैन के बौद्धाचार्य परमार्थ द्वारा चीनी भाषा में अनुवादित किये आचार्य वसुबन्धु के जीवन चरित्र में 'अयुज' (उज्जैन) के राजा विक्रमादित्य का वर्णन किया है। परमार्थ लिखते है।

'महाराजा विक्रमादित्य सनातन एवं बौद्धादि मतों के प्रति सम्भाव रखने वाले धर्मप्रिय राजा थे। उनकी सभा में सांख्याचार्य विंध्यवासी ने वसुबन्धु के गुरू बुद्धमित्र को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। विक्रमादित्य के द्वारा विन्ध्यवासी को तीन लाख स्वर्णमुद्राएँ प्रदान की गई थी।' चीनी यात्री इत्सिंग द्वारा अपने यात्रा विवरण श्ता-तंगड, सी-यू-की में वाक्यपदीयकार भर्तृहरि का उल्लेख किया गया है। प्रसिद्ध विद्वान अलबरुनी ने तारिख उल हिन्द में महाराजा विक्रमादित्य एवं आचार्य व्याड़ि के कथानक का उल्लेख किया हैं। रससिद्धाचार्य व्याडि प्राचीन भारतीय रसायनशास्त्र के ज्ञाता एवं विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। साथ ही अलबेरूनी ने महाराजा विक्रमादित्य के द्वारा शकों के पराभव का

अख्यान तथा इसकी स्मृति रूप में प्रवर्तित किये गये विक्रम सम्वत् का उल्लेख किया हैं। इनके वर्णन अनुसार पश्चिमी व दक्षिणी भारत के क्षेत्र में विक्रम सम्वत् प्रचलित था। नेपाल देश में प्रसिद्ध देवमाला वंशावली में वर्णित अनुश्रुति के अनुसार बारह वर्ष की अवस्था में विक्रमादित्य एक बार छद्मवेशधारण कर उज्जैन से नेपाल तीर्थयात्रा पर गये। नेपाल के सूर्यवंशी राजा धर्मदेव के द्वारा नित्य प्रचुर मात्रा में स्वर्णदान किया जाता था। इस अथाह सम्पदा का रहस्य ज्ञात करने हेतु उन्होंने राजा धर्मदेव की गुप्तरूप से पीछा किया। राजा नित्य निशा काल में देवी व्रजयोगिनी का दर्शन करने शांखु आते थे, पूजन के पश्चात् वे अपने देह से मांस की बलि देवी को चढ़ाते थे, जिससे प्रसन्न होकर देवी उन्हें अथाह स्वर्ण प्रदान किया करती थीं। जब यह रहस्य।

विक्रमादित्य को ज्ञात हुआ तो उन्होंने राजा धर्मदेव के आने के पूर्व ही देवी वज्रयोगिनी का पूजन का अपने शिर को काटकर देवी को भेट कर दिया। इस प्रकार विक्रमादित्य के आत्मबलिदान से प्रसन होकर देवि ने उन्हें पुनः जीवित कर चक्रवर्ती सम्राट होने का वरदान दिया। देवी व्रजयोगिनी के प्रसाद से उन्हें अग्नि वेताल की सिद्धि प्राप्त हुई। ब्रजयोगिनी का यह मन्दिर नेपाल के शंखमुल (शांखु) में स्थित हैं। नेपाल के पुरातत्व विभाग द्वारा प्रकाशित भाषावंशावली के प्रथम खण्ड में भी यह आख्यान शब्दान्तरों के साथ प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में महाराजा विक्रमादित्य के जन्म, पराक्रम, नेपाल में व्यतित किये समय एवं अन्य कथानकों का वर्णन प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के अनुसार महाराजा विक्रमादित्य का जन्म रविवार वसन्त पंचमी को हुआ था। तमिलनाडु में प्रचलित पट्टिनाथार एवं भर्तृहरिनाधार सम्बन्धित अनुश्रुति के अनुसार तमिलदेश के सिद्धपुरूष पट्टिनाधार काशी विश्वनाथ का दर्शन कर स्वदेश लौट रहे थे, यात्राक्लान्त होने के कारण उन्होंने उज्जयिनी की एक धर्मशाला में विश्राम किया दैववशात् गर्न्धवसेन के पुत्र राजा भर्तृहरि के सैनिकों के द्वारा उन्हें आभूषणों की चोरी के मिथ्यारोप में बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया गया। राजा द्वारा उन्हें चोरी के आरोप में सुली पर चढ़ा देने का दण्ड दिया। सैनिक जब राजाज्ञा का पालन करते हुए सूली तैयार कर रहे थे, तब पट्टिनाथार के दृष्टिपात मात्र से सूली जलकर भस्म हो गई। इस पर जब सम्पूर्ण घटना का विवरण सैनिकों ने राजा भर्तृहरि को बोध हुआ कि ये कोई अपराधी न होकर महात्मा वा सिद्धपुरूष है। राजा भर्तृहरि ने घटनास्थल पर पहुँच कर क्षमा याचना की और पट्टिनाथार को बन्धनमुक्त किया। पट्टिनाथार ने राजा को बोधित करने हेतु पुछा, तुम्हें संसार में सबसे अधिक प्रेम एवं विश्वास किस पर है? राजा ने उत्तर दिया अपनी पत्नी पिंगला पर। इस पर मन्द–मन्द हँसते हुए पट्टिनाथार ने कहा पहले एक बार अपने अन्तःपुर का निरिक्षण तो कर लो। उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर जब भर्तृहरि ने अन्तःपुर में प्रवेश किया तो अपनी पत्नी पिंगला के अस्तित्व का प्रकटन हुआ, शुब्ध होकर भर्तृहरि ने अपना राज्य अपने अनुज विक्रमादित्य को सौप संन्यास ग्रहण कर लिया। मात्र कौपिन तथा भिक्षापात्र धारण कर भर्तृहरि अपने गुरु पट्टिनाथार के साथ वे दक्षिण देश में चले गये। यहाँ पर तिरूवोट्टियुर नामक शिवक्षेत्र में साधना करते हुए भर्तृहरि को मोक्ष की प्राप्ती हुई। ऐतिहयमाला केरल की ऐतिहासिक तथा अनुश्रुति पर आधारित घटनाओं का संग्रह हैं जिसकी रचना केरल के प्रसिद्ध विद्वान कोट्टारथिल शाकुन्नि ने सन् 1875–1900 के मध्य की था। इस ग्रन्थ में केरल के इतिहास से जुड़े व्यक्तित्वों का ऐतिहासिक तथा अनुश्रुतिओं के अनुरूप वर्णन प्राप्त होता हैं। सामान्यतया विद्वानों ने विक्रमादित्य तथा भर्तृहरि का सम्बन्ध मालवदेश से जोड़ा है, परन्तु यदि ऐतिहयमाला को आधार बनाकर इन दोनों व्यक्तित्वों का अध्ययन किया जाएँ तो इनका संबन्ध सुदूर दक्षिण की केरल भूमि से जोड़ा जा सकता है। डॉ. श्रीकुमारी रामचन्द्रन तथा केरल के प्रसिद्ध इतिहासकार एम. आर. वारियार ने ऐतिहयमाला के आधार पर दोनों भ्राताओं का सम्बन्ध चेरदेश से साकुन्नि लिखते है– केरल के एक प्रसिद्ध नाम्बुधिरी घराने में एक मुर्ख ब्राह्मण बालक था। मेधा तथा प्रज्ञा के अभाव में विद्वानों के उस परिवार में वह अत्यन्त दुःख पाता था। एक बार अपने दादा के आद्ध में इस बालक से कोई अपराध होने के कारण उसे निष्कासित कर दिया गया, और बालक से कहा गया यदि तुम महाभाष्य का सम्पूर्ण अध्ययन कर सकों तो हर यहां पुनः आना अन्यथा तुम्हे आत्मघात करना शोभा देता है। बालक ने निश्चय किया की वह महाभाष्य का अध्ययन अवश्य करेगा। केरल के विद्वानों में उस बालक की मुर्खता के किस्से प्रसिद्ध थे अतः कोई भी उसे महाभाष्य पढ़ाने को राजी न हुआ। अन्त में बालक ने निराश होकर आत्मघात करने का विचार किया। वहीं एक वृक्ष पर विद्यादान नहीं करने के फलस्वरूप ब्राह्मण का प्रेत ब्रह्मराक्षस योनि में रहता था।

विक्रमकालीन मालवा की भौगोलिक स्थिति

डॉ. मुकेश कुमार शाह

वर्तमान मध्य प्रदेश के पश्चिमी अंचल के उज्जैन, इन्दौर तथा भोपाल सभाग की मालवाचल कहना साधारणतः उचित है। प्राचीनकाल में मालवा भारत का एक महत्वपूर्ण अंचल था, जिसने गम्भीरतापूर्वक प्रभाव डाला। भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से मालवा को भारत का हृदय कहा जा सकता है। मालवा एक पठारी क्षेत्र है जो कि प्राचीनकालीन मगध, कलिंग तथा सौराष्ट्र जैसी ही राजनीतिक इकाई के रूप में स्थापित था। छठी शताब्दी ई. पू. में यह क्षेत्र अवन्ती जनपद के नाम से प्रसिद्ध था, किंतु पाँचवीं शताब्दी ईसवी तक आते–आते यह बृहद् रूप से मालवा कहा जाने लगा। अवन्ती जनपद की स्थापना का श्रेय यदुवंश की हैहय शाखा को जाता है। भारत युद्ध से शताब्दियों पूर्व अवन्ती जनपद हैहयों की राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। हैहयों के एक उल्लेखनीय शासक माहिष्मन्त ने माहिष्मती को इस जनपद की राजधानी के रूप में विकसित किया। काफी लम्बे समय तक अवन्ती जनपद की राजधानी माहिष्मती रही। इसके उपरान्त जब भार्गवों ने हैहय राज्य का उन्मूलन किया तो हैहयों की विभिन्न शाखाओं को माहिष्मती छोड़ना पड़ा। उनकी एक शाखा ने मध्य मालवा में उस नगर का निर्माण किया, जिसे आज उज्जैन कहा जाता है। धीरे–धीरे उज्जयिनी का महत्व बढ़ता चला गया और उज्जयिनी, अवन्ती जनपद की राजधानी के रूप में सामने आयी। भारत युद्ध के समय उज्जयिनी अवन्ती जनपद का एक मुख्यालय था। आदि पुराण नामक जैन ग्रन्थ अनुसार आदिनाथ ऋषभदेव द्वारा स्थापित किये गये बावन जनपदों में अवन्ती भी एक था। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर–निकाय ने ईसा की छठी शताब्दी पूर्व में उत्तरदृभारत में जो सोलह जनपद बताये थे, उसमें सम्पूर्ण भारत पर था। पाणिनी के अष्टाध्याय में भी इसका उल्लेख कहलाने लगा। यह अनूप जनपद आजकल निमाड़ कहलाता है। इस प्रकार पश्चिमी और मध्य मालवा का क्षेत्र अवन्ती के नाम से पुकारा जाता था, किंतु पूर्वी मालवा का विदिशा क्षेत्र आकार नाम से प्रसिद्ध हुआ। कालिदास के विवरणानुसार यह क्षेत्र दशार्ण भी कहलाता है। अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि मालवगण से संबंधित रहने के कारण यह क्षेत्र मालवा कहलाने लगा। मालवजन मूलतः कहाँ के निवासी थे, इस पर अधिकतर विद्वानों की यह धारणा है कि ये पंजाब के निवासी थे और सिकन्दर के आक्रमण के बाद वे राजस्थान में बस गये। इसके उपरान्त उनकी कुछ शाखाएँ अवन्ती क्षेत्र में आयी और इस क्षेत्र को मालवा नाम मिला मालव जाति का सर्वप्रथम उल्लेख पाणिनी ने आयुधजीवी जाति के रूप में किया है। उनके वर्णन से यह ज्ञात होता है कि इस जाति के लोग उत्तर–पश्चिम भारत के निवासी थे। महाभारत में मालयों का वर्णन वैगर्त्य, शिवि तथा अम्बष्ट के साथ किया गया है। महामाष्यकार पतंजलि भी उनके नाम का उल्लेख

करते हैं। सिकन्दर के साथ आए यूनानी इतिहासकार पंजाब के 'मल्लोई' का वर्णन करते हैं। उनके वर्णन के आधार पर विन्सेण्ट स्मिथ ने यह निर्णय निकाला कि मलाई झेलम एवं चिनाब नदी के मध्य उस स्थान पर बसे हुए थे, जहाँ वर्तमान झंग और माण्टगुमरी जिले हैं। मैक क्रिण्डल ने उन्हें चिनाब और रावी नदी के मध्य मुल्तान और मण्टगुमरी जिले में अपने मूल रूप में बसा हुआ बताया है। ये सारे स्थल वर्तमान में पाकिस्तान के पंजाब में है। इन विद्वानों ने यह सम्भावना प्रकट की है कि मरलाई है। अधिकांश भारतीय विद्वानों ने इस धारणा को यथावत् स्वीकारा है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिकन्दर से युद्ध के उपरान्त वजन राजस्थान के जयपुर मेवाड़, कोटा आदि क्षेत्रों की ओर चले आये। कनिंघम ने इस क्षेत्र से मालवगण के प्राप्त सिक्कों का समय 250 ई. पू. से 250 ई. तक माना है, जबकि विन्सेण्ट स्मिथ और रेप्सन इन्हें 150 ई.पू. से 4–5 शताब्दी ईसवी तक मानते हैं। जेम्स ऐलन इन्हें दूसरी–चौथी शताब्दी ई. के मध्य मानते हैं। सम्भवतः तीसरी शताब्दी ई.पू. से लेकर चौथी शताब्दी ईसवी तक मालव राजस्थान में बसे थे, क्योंकि उनकी मुहरें, सिक्के तथा अभिलेख इस क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। लगभग तीसरी व चौथी शताब्दी ई. में मालवजन अवन्ती क्षेत्र में प्रवेश कर गये। डी.आर. भण्डारकर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मूल रूप में मालव पंजाब के निवासी थे। सिकन्दर के आक्रमण के उपरान्त वे दक्षिण–पूर्वी राजस्थान में आ गये और क्रमशः अवन्ती क्षेत्र में प्रवेश कर गये। शक क्षत्रप नहपान के दामाद

ऋषभदत्त के नासिक गुहा अभिलेख में मालवों का जिस प्रकार से उल्लेख किया है, उससे यह अनुमान लगाया जाता है कि वे जयपुर के पास बसे थे। कृत सम्वत् 282 के नांदसा यूप अभिलेख में मालवगण का उल्लेख एक विजयी जाति के रूप में हुआ है। कृत सम्वत् 284 के बरनाला अभिलेख में भी मालवगण का उल्लेख हुआ है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति भी मालवा गणराज्य के उन्मूलन का उल्लेख करती है। दशपुर के औलिकर शासक अपने अभिलेखों में स्वयं को न केवल मालव मानते हैं, अपितु अपने अभिलेखों में भी उन्होंने मालव–सम्वत् का प्रयोग किया है। मध्य राजस्थान में उनियारा, नगरी आदि स्थानों पर मालव गणराज्य के प्रभूत मात्रा में सिक्के तथा कुछ अभिलेख मिले हैं। सिक्कों पर मालव गण की जय अंकित किया गया है। कालान्तर में मालव गण कई शाखाओं में विभक्त होकर अपना मूल गणराज्यीय स्वरूप खो बैठा। बहुत सम्भव है कि पश्चिमी मालवा के औलिकर मालवों की एक शाखा रहे हों। यही कारण है कि उन्होंने अपने अभिलेखों में मालव–सम्वत् का प्रयोग किया है। पाँचवीं शताब्दी में रचित पादताड़ितक नामक भाण, मालव शब्द को एक गणराज्य सूचक शब्द न मानते हुए जाति एवं क्षेत्र इन दोनों का ही सूचक शब्द मानते हैं। इस समय तक अवन्ती जनपद और मालवा दोनों भिन्न क्षेत्र थे। इस बात का प्रमाण वात्स्यायन का कामसूत्र, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, वराहमिहिर की बृहत्संहिता और इनके काफी समय बाद रचित बाणभट्ट की कादम्बरी देती हैं। हवेनसांग द्वारा वर्णित 'भौलापो' भी 'मालवा' ही था। हर्षचरित के अनुसार मालवा का राजा देवगुप्त था। पाँचवीं शताब्दी के वाकाटक नरेश पृथ्वीसेन द्वितीय के बालाघाट अभिलेख में मालवा का उल्लेख स्पष्टता एक प्रदेश के रूप में आया है। उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पाँचवीं शताब्दी से 'मालवा' शब्द एक गणराज्य अथवा जाति के रूप में प्रयुक्त न होते हुए एक क्षेत्र के रूप में प्रयुक्त होने लगा था। आठवीं शताब्दी ईसवी तक आते–आते मालवा स्पष्ट ही वह क्षेत्र माना जाने लगा था, जिसे न्यूनाधिक रूप में हम आज प्राचीन 'मालवा' कालिदास के मेघदूत में मालवा की भौगोलिक स्थिति विक्रम सम्वत् प्रवर्तक विक्रमादित्य के नवरत्न कवि कालिदास के ग्रन्थ मेघदूत में पूर्वमेध से तद्युगीन मालवा की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान होता है। इसमें दशार्ण देश की राजधानी विदिशा तथा वहाँ बहने वाली नदी वेत्रवती (बेतवा)। इसके आगे के क्षेत्र में उत्तर दिशा की ओर उज्जयिनी के पहले निर्विन्हया (नेवज) नदी तदनन्तर अवन्ती (उज्जयिनी) नगरी और यहाँ की क्षिप्रा तथा गंभीरा (गंभीर) नदी तथा आगे चलकर चर्मण्वती (चम्बल) नदी तथा उसे पार करने के बाद दशपुर (मंदसौर) नगरी का बड़ा ही रोचक और मार्मिक वर्णन कालिदास ने किया है, जो मालवा की भौगोलिक स्थिति तथा यहाँ की नदियों के विषय में महत्वपूर्ण है। मंदसौर से लगभग 18 कि.मी. दूर ॲवलेश्वर के समीप एकाश्मक स्तम्भ पर एक लेख उत्कीर्ण है, जिसका सम्बन्ध विक्रमादित्य से है। इस स्तंभ पर विक्रमादित्य नामोल्लेख भी है। अतः इससे भी स्पष्ट होता है कि विक्रमादित्य की राज्य सीमा में मंदसौर क्षेत्र आता था, अतः अभिलेख और साहित्य दोनों ने विक्रमादित्य के राज्य के भौगोलिक विस्तार को समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त रघुवंश के सर्गो में मालवा सम्बन्धी जानकारी प्राप्त–आधुनिक मालवा की भौगोलिक पृष्ठभूमि, स्थिति एवं विस्तार यह प्रदेश विध्य पर्वत श्रेणी के उत्तरी अंचल में फैला हुआ एक विस्तृत पठार है, जो संपूर्ण मध्य भारत क्षेत्र में एक उभरे हुए भूखंड के रूप में अपनी भौगोलिक सीमाएँ स्वतः निर्धारित करता हुआ सा प्रतीत होता है। अनुश्रुति और भूगोलवेत्ताओं दोनों ही स्रोतों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर आते है कि मालवा का पठार बेतवा, चम्बल और नर्मदा नदियों के बनाये गये त्रिकोण के रूप में है। यह समुद्रतल से 1500 से 2000 फीट ऊँचा है। इसके पश्चिम तथा उत्तर–पश्चिम में अरावली पहाड़ियाँ हैं, जो कि विश्व मानचित्र में सर्वाधिक प्राचीन पहाड़ तंत्र है। मालवा के उत्तर में विन्ध्य तथा दक्षिण में सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियाँ हैं। पूर्व में भोपाल से चन्देरी तक ये पर्वत श्रेणियाँ एक भूजा की तरह तथा पश्चिम में अमझेरा से चित्तौड़ से चन्देरी तक चली गयी हैं। मध्य में स्थान–स्थान पर जो पहड़ियाँ हैं, वे भी विन्ध्य श्रेणियों का ही सिलसिला है। कुल मिलाकर मालवा एक उच्च समभूमि है, जो अपने अधिकांश भाग में काली लावा मिट्टी के मैदान के रूप में प्रतीत होती है।मालवा पठार की जलवायु साधारणतः सुहावनी है, किन्तु गर्मी एवं सर्दी में जलवायु अपवाद स्वरूप क्रमशः गर्म एवं अधिक ठंडी हो जाती है। जहाँ तक दिन और रात के तापमान का प्रश्न है, दिन की अपेक्षा मालवा की रातें अधिक सुहावनी हो जाती हैं। मालवा की रातों ने इसी कारण शब–ए–मालवा के रूप में प्रकीर्ति पायी है। वैसे मालवा की जलवायु उत्तर भारत की सामान्य जलवायु से भिन्न नहीं है। वहीं तीन ऋतुएँ और छः उप–ऋतुएँ यहाँ छटा बिखेरती हैं। जून के समाप्त होते ही मानसून आ जाता है और औसत में प्रतिवर्ष 30 इंच बरस कर विदा ले लेता है। औसत सुहावनी वर्षा, औसत सुहानी सर्दी और औसत सुहानी गर्मी मालवा पठार की विशेषता है। प्रकृति ने उपजाऊ काली लावा मिट्टी देकर मालवा के साथ न्याय किया है। जलभरी नदियाँ, जलकूपों एवं तालाबों द्वारा प्राप्त होने वाली सिंचाई सुविधाएँ इस उर्वरा शक्ति को और भी अधिक बढ़ाते हैं। संपूर्ण मालवा में पीपल, नीम, पलाश, वट, बबूल, खेजड़ा, इमली, अशोक, महुआ आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। विन्ध्य श्रेणियों पर वनों की भरमार है, जहाँ सागवान, सादड़, काला अंजन, खजूर तथा शीशम के वृक्ष बहुतायत से प्राप्त होते हैं। मालवा का पठार एक उपजाऊ क्षेत्र है और यही कारण है कि कबीर ने इसकी प्रशस्ति इन शब्दों में गायी है कि देस मालवा गहन गम्भीर, पग–पग रोटी, डग–डम नीर इस प्रकार मालवा का वर्तमान भौगोलिक क्षेत्र लगभग 47780 वर्ग किलोमीटर तक विस्तृत है तथा इसमें इन्दौर, उज्जैन, भोपाल। संभागों के अन्तर्गत धार, झाबुआ, रतलाम, देवास, उज्जैन, इन्दौर,मन्दसौर, सीहोर, भोपाल, शाजापुर, रायसेन और विदिशा जिले आते हैं।

वैदिक सौंदर्य एवं दार्शनिक व्याख्या

ईशान अवस्थी

वैदिक चिंतक ने जिस तत्व से अपने मन में कोई सुखद अनुभूति प्राप्त की है, उसे सुः (सुंदर) कहा है, यह मात्र सुंदरता नहीं है, इसमें भद्र और कल्याण भाव भी सम्मिलित है। सुम शब्द सु ओइम के योग से बना है। ऐसे तीन शब्द है सुः या सुम, या उम्र और हु या हुए। सु उ में ब्रह्म का नाम है अतः उम् शांति व नम्रता का सूचक है। उसे उमा, ओइम् ओमन निष्पन्न होता है जो आनंदकारी तत्वों के नाम है। ओइम् वरदान, दया व प्रसन्नता आदि सुखद वस्तुओं या स्थितियों से संबंधित है। इस प्रकार वैदिक सौदर्य की अवधारणा में आनंदानुभूति ही सौंदर्यानुभूति है।

वैदिक कालीन रूपकर कलाओं अर्थात्, चित्र, मूर्ति और स्थापत्य में आर्यों की सौंदर्य अवधारणा स्पष्ट रूप में परिलक्षित है। वैदिक समाज और शिल्पी सौदर्य के प्रति पूर्णरूपेण सजग है। सौंदर्य के प्रति उसकी अभीप्सा विशेष रूप से रेखांकित की जा सकती है, जबकि सुंदर या सौंदर्य शब्द और सौंदर्य की व्याख्या करने वाला कोई सौंदर्यशास्त्र उपलब्ध नहीं है। ऐसा इसलिए कि वैदिक ऋषि–कवि और शिल्पियों का अभिप्राय सौंदर्य का शास्त्रीय विवेचन करना। उन्होंने न तो आज की भाँति सौंदर्य को एक अलग शास्त्र का विषय माना और न कलाओं में किसी प्रकार का भेद ही किया। उन्होंने तो समग्र को समग्र रूप में ही देखा, सृष्टि व्याप्त सौंदर्य को अखड़ और बृहद रूप में देखा। उनके लिए कला या सौंदर्य का उस दर्शन के साथ अभिन्न संबंध है, जो सत्यान्वेषण के लिए विराट और वामन (ब्रह्मांड और पिंड) के दर्शन की अनिवार्यता पर बल देता है। सृष्टि और सृष्टि के नियंता का दर्शन ही विराट का दर्शन है और विराट के दर्शन के लिए समग्र रूप ही उपादेय है, खंड–खंड या पृथक–पृथक दर्शन से विराट की महत्ता कदापि स्पष्ट नहीं होती। अतः समग्र रूप में सौंदर्य की चर्चा उसने धर्म, दर्शन और काव्य में ही की है। वैदिक साहित्य में सुंदर या सौंदर्य शब्द के न मिलने पर कुछ विद्वानों का मत है कि वैदिक आर्यों में सौंदर्य की चर्चा नहीं हुई है, लेकिन ऐसा नहीं है। वैदिक साहित्य में उच्च स्तर की सौंदर्य विवेचना हुई है, जिसे सौंदर्यवाची पदावली में देखा जा सकता है। आर्यों की सौंदर्य अवधारणा श्री की परिकल्पना में तथा सोम और ओइम्, स्वस्ति आदि प्रतीकों में विशेष रूप से निहित है। श्री शब्द वैदिक सौंदर्य चिंतन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। श्री मूलतः शब्द रूप में प्रयुक्त हुआ है। जिसका अर्थ ही सौंदर्य है। सायण के अनुसार श्री का अर्थ समृद्धि, संपन्नता, बाहुल्य, प्रभूति और कल्याण आदि है।

इन्ही अर्थों में सुंदर, भास्वर, दैदीप्यमान और अलकृति भी सम्मिलित है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि श्री शब्द सौंदर्यवाची पद है, क्योंकि उसका विलोम अ–श्री व अ–श्रील शब्द वैदिक साहित्य में भद्दे और असुंदर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ऋग्वेद में श्री सौंदर्य की देवी के रूप में मानवीकृत होकर उभरी है। नारी का कमनीय, सुसज्जित, सुअलंकृत, सुप्रसाधित सौंदर्य से परिपूर्ण रूप ही देवी श्री के रूप में परिकल्पित है। वह विश्व व्याप्त दिव्य सौंदर्य की प्रतीक है, जिसने आगे विकास पाकर ऋग्वेद के उत्तर कालीन साहित्य में देवी श्री का पद प्राप्त किया। वैसे देवी का पद प्राप्त करती हुई श्री ऋग्वेद में ही दिखायी देती है, क्योंकि वैदिक सौंदर्य–चेता ऋषि ने श्री को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए, उसे देवी मानते हुए उसके लिए एक समग्र सूक्त समर्पित किया है, जिसमें उसने श्री देवी से सौदर्य (श्री) व सौभाग्य की याचना की है। यद्यपि ऋग्वेद की देव–सूची में श्री का नाम नहीं है, लेकिन उसे समग्र सूक्त समर्पित किया जाना इस बात का प्रमाण है कि उसे एक देवी के रूप में परिकल्पित किया गया है। डॉ. मोतीचंद्र का कहना है कि श्री सक्त में श्री को आर्द्रा कहा गया है, जिसमें ताजगी (फेसनेस), वनस्पति की भाँति हरित, सप्राण (सचेतनता) और गंध प्राध्यता के अर्थ की अभिव्यंजना होती है। ऋग्वेद के उपरांत श्री अथर्ववेद की भावात्यक विग्रहवत्ताओं में भी उपस्थित है। श्री सूक्त की सौंदर्यमयी श्री देवी की अवधारणा मानवीकृत होकर सौंदर्य और सौभाग्य की देवी के रूप में शतपथ ब्राह्मण में स्पष्टतः उभरी है, जहाँ उसके सबसे पहली बार साक्षात् दर्शन होते हैं। श्री देवी के साक्षात् दर्शन वाजसनेयी संहिता में करती है, जहाँ श्री एक पृथक देवी के रूप में स्पष्ट उभर कर आयी है। आगे चलकर इसी श्री देवी ने पद्मा देवी के रूप में विकास पाया है। श्री की भाँति वैदिक सौंदर्य चिंतक ने सोम में सौंदर्य देखा है। उसमें उसने रस रूप में प्राण–तत्व, दिव्य–प्रकाश और आनंद की उच्चावस्था देखी है। वस्तुतः सोम वैदिक सौंदर्य सृष्टि का एक महान् बिंदु है। वेदों में सौंदर्य तत्व को स्वस्ति की संज्ञा दी गयी है। और वैदिक मानव के जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य

कर्त न स्वस्तिमत अर्थात्, स्वस्तिमान होना है। स्वस्ति शब्द सु (सुंदर) और अस्ति (सत्ता या सत्य) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ सुंदर–सत्य या सत्य–सुंदर है। इसी स्वस्ति भाव की अभिव्यक्ति स्वास्तिक के रूप में पायी जाती है। वैदिक साहित्य में सौंदर्य शब्द के बजाय उसके अर्थवाची अनेकानेक शब्द उपलब्ध है, यद्यपि प्रारंभिक वैदिक साहित्य में सुंदर और सौंदर्य जैसे शब्दों का अभाव है परंतु वहाँ आनंद, मोद, आमोद, मुद, प्रमोद, प्रिय आदि शब्द सौदर्यानुभूति की ओर संकेत करते हैं। सुंदर और सौंदर्य जैसे शब्दों के न मिलने का कारण यह है कि वैदिक ऋषि ने उस सौंदर्य को कभी मान्यता नहीं दी जिसमें शुचि, शुभ और भद्र का समन्वय न हो। इसलिए सौंदर्य की व्याख्या उसके लिए सदैव व्यापक अर्थ में ही रही। उसने सौंदर्य को ज्याति (प्रकाश) के रूप में देखा है जो स्वयं प्रकाशमान तो है ही, दूसरों को भी प्रकाशित करने की क्षमता रखती है। उसके दर्शन से मन में पवित्रता, शुभ्रता, सत्य, शिव और भद्र भावों की निष्पत्ति होती है। सौंदर्य के इस व्यापक अर्थबोधी दृष्टिकोण के अनुसार वैदिक साहित्य में सौंदर्य के लिए अनेक शब्द और प्रतीक उपलब्ध है। पिशेल और ओल्डनबर्ग ने ऋग्वेद में प्रयुक्त ऐसे शब्दों की एक लंबी तालिका गिनायी है जैसे,पेशस, अस वपुः रूप लावण्य, बल्गु, त्रिय, मद्र, चारु, प्रिय, शुभ, कल्याण, अद्भुत आदि–आदि अलंकृत और विशेष आकर्षक परिधान है, लेकिन इसके साथ विश्वपेशस, हिरण्यपेशस व सहप्रपेशस आदि शब्द भी प्राप्त है। इन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि ये पेशस के विभिन्न प्रकार नहीं, बल्कि पेशस के सुंदर से सुंदरतम रूप के अभिव्यपरक शब्द है। विश्वरेशम शब्द से जैसा प्रतिध्वनित होता है, वह विश्व व्यापक सौंदर्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार सहस्रपेशस शब्द सौंदर्य के परमपूर्ण आदर्श रूप के लिए प्रयुक्त हुआ है। पास्क ने पेश को आदर्शात्मक आनंद, आत्मा और अर्थ का समन्वय सूचक शब्द माना है। अपर सौंदर्यवाची शब्द के रूप में विषयगत सौंदर्य का सूचक है। वपुः शब्द उदात्त के अर्थ की अभिव्यंजना करता है, जिसमें आदर व भय की समन्वित अवस्था, जीवन का आध्यात्मदर्शन तथा सत् की अनुभूति या ज्ञान का अर्थबोध होता है। यह शब्द भी उदात्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जिसमें विरोधी भावों के उद्भव तथा विषयों का अर्थ निहित है। रूप बहुचर्चित शब्द है जो मात्र आकार ही नहीं, बल्कि उससे भी आगे सौंदर्य की व्यापकता को अभिव्यजित करता है। लावण्य शब्द मानव शरीर अथवा अंतर्बाहय अवस्था का सौंदर्यबोधी है। सौंदर्य की मानव से संबंधित माना गया है और लावण्य को देवताओं से चारू चास्ता और सुंदर से भी बढ़कर जो सौदर्य है वह लावण्य है, जिसे राधाकमल मुखर्जी अध्यात्म–सौंदर्य या दिव्य–सौंदर्य बताते है। शुभ और शुभस्पति पवित्रता के द्योतक शब्द है। अतः इन शब्दों द्वारा आंतरिक व बाह्य सौंदर्य के समन्वित अर्थ की भी अभिव्यक्ति की गयी है। अश्विन सौंदर्य के प्रेमी है इसीलिए वे शुभस्पति हैं। सौदर्यवाची पदों के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण में एक महत्वपूर्ण उल्लेख है कि सृष्टि के सृष्टा देवशिल्पी प्रजापति ने अपनी आत्मा से सोलह कलामय पुरुषों को उत्पन्न किया या स्वयं को इन सोलह कलाओं में व्यक्त किया। ये सोलह कलामय पुरुष जैमिनि ब्राह्मण के अनुसार भद्रम् संपत्ति, आभूति, संभूति, भूत, सर्व, रूप, अपरिमित, श्रीयश, नाम, अग्र, सजाता, पयस महीय व रस है। ये सभी सोलह कलाएँ वही है जो वैदिक पावली के सौदर्यबोधी शब्द है। इन शब्दों के अर्थ एक नहीं बल्कि भिन्न–भिन है। ये भिन अर्थ आर्यों के सौदर्य विषयक ज्ञान का विशद परिचय देते हैं। इस सौंदर्याची पदावली के उपरात वैदिक आर्यों की सौंदर्य विषयक मान्यताओं और मानदंडों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि आर्यों ने सौंदर्य के आदर्श रूप देवों में देते हैं। वैदिक ऋषि ने अपने आप–पास जिस सौंदर्य के दर्शन किये, जिस आभा, ज्योति या प्रकाश ने उसकी आँखों को आकृष्ट किया, जिस लावण्य ने उसके हृदय को पुलकित किया, उस सब को उसने समन्वित कर उसे देवों की श्रेष्ठतम सत्ता के रूप में परिकल्पित किया और उससे स्वयं सौदर्यानुभूति की। ऋग्वेद का हिरण्यगर्भा अद्वितीय प्रकाशयुक्त, दैदीप्यमान, सर्वांग सुंदर, सर्वशक्तिमान, अत्यंत रम्य–रूपवान देव है, जो सौंदर्य का परम आदर्श है। यही हिरण्यगर्भादेव उपनिषदों का परमब्रहा है, जो सत (सत्य), चित (चेतना) और आनंद (रस) युक्त सच्चिदानंद स्वरूप है। सौंदर्य को ईश्वरीय शक्ति से संबद्ध मानने से उसमें नैतिकता, मंगल अथवा विशुद्धिकरण आदि की भावनाओं का समिश्रण हो गया है। इसीलिए हैवेल का कथन है कि भारतीय दृष्टि सप्रवास सुंदर की खोज नहीं करती, बल्कि उसका मुख्य प्रयास ऐसे वैचारिक स्तर को पा लेने का रहता है जहाँ वह सीमित के माध्यम से असीम को पा सके और भौतिक सौंदर्य की मूलधारा को आध्यात्मिक सौंदर्य की धारा में प्रवाहमान सिद्ध कर सके। सोम वैदिक सौंदर्य अवधारणा की एक विशिष्ट उपलब्धि है। जिस तत्व से सुखद अनुभूति प्राप्त की गयी उसे सुः या सुम कहा गया। यही सुम सोम है, रस है। यथा पिंड तथा ब्रह्माण्ड के समीकरण से सोम जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, ज्योति, सौंदर्य और आनंद का संबंध उसी ब्रह्माण्डीय सोम तत्व से है, यही सोम जीवन का रस है जो शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक निर्मलता, प्रसन्नता व शांति प्रदान करता है। इस प्रकार सोम मानव के अंतःकरण की ज्योति सौंदर्य की आत्मा से भी संबंधित है। शतपथ ब्राह्मण ने 'श्रीवै सोमा' कहकर सोम को सौंदर्य का हेतु, सोम को ही विष्णु (वर्धनशील), सोम को ही राजा चंद्रमा बतलाया है। चंद्रमा के पर्याय रूप में सोम की प्रस्थापना का कारण उसकी ज्योति व अहलादकारिणी शक्ति है। सौंदर्य केवल अनुभूति में नहीं, अपितु सृष्टि में भी है, क्योंकि अनुभूति की भावना सृष्टि में उतरती रहती है। इसीलिए सोम को 'प्राणौ वै सोमः' कहा गया है अर्थात्, सोम ही प्राण तत्व है। कला की साधना में प्राण की प्रतिष्ठा अनिवार्य है। इसी प्राण तत्व को शिल्प के साथ संबद्ध कर देखा गया है। प्राण आत्मा की सत्ता का सूचक है और कला आत्मसंस्कृति की। यही कारण है कि कला की साधना और आनंद की साधना एक ही मानी जाती है।

गन्धर्वपुरी की किवदंतियों में गन्धर्वसेन

नरेश कुमार पाठक

गन्धर्वपुरी देवास जिले की सोनकच्चा तहसील का कस्बा है। यह स्थल सोनकच्छ के उत्तर पूर्व में 9 कि.मी. की दूरी पर पिपलरांवा मार्ग पर सोमवती नदी के किनारे स्थित है। गन्धावल या गर्धपुरी की प्राचीनता एवं ऐतिहासिकता के संबंध में अनेक दन्त कथाएँ प्रचलित है। जनश्रुति के अनुसार गर्धपुरी नगर की स्थापना विक्रमादित्य के पिता गर्धपुरी गर्दभिल्ल के द्वारा की गई थी। डॉ. राजबली पाण्डेय एवं एस.के. दीक्षित ने विक्रमादित्य एवं गर्न्धपुरी की ऐतिहासिकता के संबंध में साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर प्रामाणिकता सिद्ध करने का प्रयास अपने शोध कार्य एवं अन्य स्त्रोतों से किया है कि गर्धसेन मालव जाति का शासक एवं विक्रमादित्य का पिता था। गन्धर्वसेन को गर्दभिल्ल तथा कहीं–कहीं महेन्द्रादित्य भी कहा गया है। शकों से पराजित होकर गन्धर्वसेन ने उज्जैन से पूर्वोत्तर दिशा में पलायन करना पड़ा था। पलायन के समय सम्भवतः गन्धर्वसेन ने गन्धर्वपुरी को बसाया था। भौगोलिक रूप से संरक्षित यह भू–भाग संकट काल के लिये उपयुक्त था। गन्धर्वपुरी से ही शक्ति संग्रह कर विक्रमादित्य ने ई.पू. 57 में शकों को पराजित किया था और विक्रम संवत् को प्रारम्भ किया था प्रचलित जनश्रुति की ऐतिहासिकता को प्रमाणित करने के लिये पुरातत्वीय साक्ष्य का होना आवश्यक है, किन्तु यह दुर्भाग्य है कि गन्धर्वपुरी से प्राचीन साक्ष्य प्राप्त नहीं हुये है। डॉ. रमेशचन्द्र यादव के अनुसार नदी के दूसरी ओर यदि गहन सर्वेक्षण करे तो गन्धर्वपुरी के प्राचीन साक्ष्य प्राप्त हो सकते है, जिससे गन्धर्वपुरी की ऐतिहासिकता ई.पू. तक सिद्ध की जा सकती है गन्धर्वपुरी का प्रसिद्ध मंदिर गन्धर्वसेन के नाम से है। यह शैलिगत आधार पर लगभग 11 वीं 12 वीं शती ईसवी का होकर भूमिज शैली का है। इस नगरी का सबसे प्राचीन नाम चम्पावती था बाद में यह गन्धर्वनगरी कही जाने लगी।

किवदन्ती के अनुसार किसी समय महाराजा गर्दभिल्ल यहाँ पर शासन करते थे उन्हीं के नाम पर यह स्थान गंधावल कहा जाने लगा। यह नाम ग्वालियर राज्य एवं मध्य भारत तक चला। यहाँ पर बने देवालय में पाषाण प्रतिमा मिली थी। जिसको इस गाँव के निवासी व व स्थानीय लोग महाराजा गर्दभिल्ल की मूर्ति बताते है। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री रहे डॉ. कैलाशनाथ काटजू इसे देखने आए थे। उपयुक्त देवालय में सामने उन्होंने एक ऐसा पाषाण पट्ट देखा जिसमें दोनों और मूर्तियों उत्कीर्ण थी इस पर एक ओर गरुडासीन लक्ष्मीनारायण अंकित है तथा दूसरी ओर अन्य लघु मूर्तियों के साथ–साथ प्रतिमा के उपरी भाग में गंधर्वो का चित्रण किया गया। डॉ. काटजू ने केवल इसी मूर्ति के एक मात्र आधार पर गधावल से इसे गन्धर्वपुरी की सज्ञा प्रदान की और तब से इस क्षेत्र के लोग इसे गन्धर्वपुरी कहने लगे। उज्जयिनी के शासक गन्धर्वसेन गर्दभिल्ल ने जैनाचार्य कालक की भागिनी आर्य रक्षित सरस्वती का शील भंग किया था, कालकाचार्य कथानक में उल्लेख है कि जैनाचार्य ने क्रोधित होकर शक नरेश नहपान को उज्जैन पर आक्रमण हेतु आमंत्रित किया। क्षहरात वंशी क्षत्रय नहपान के उषवदत्त के नासिक गुहा लेख क्रमांक दस से ज्ञात होता है कि अपने मित्र उत्तम भद्रो को आक्रमणकारियों के विरूद्ध सहायता करने गया था। इस युद्ध में मालव पराजित हुये थे। सम्भवतः उत्तरभद्र उज्जैयिनी का शासक रहे होंगे। वे जैन धर्म के संरक्षक होने एवं उन्होंने जैनाचार्य के माध्यम से शकों की सहायता की होगी। जिसमें मालवराज गन्धर्वसेन पराजित हुआ और उज्जैयिनी की सत्ता से विरक्त होकर जंगलों में भटकना पड़ा। यहाँ उसने नवीन नगर गंधर्वपुरी की स्थापना की। गन्धर्वपुरी से संबंधित किवदंती का श्री गणेशदत्त शर्मा इन्द्र द्वारा गन्धावल नामक आलेख दिये है, जिसका विवरण इस प्रकार है। गन्धर्वपुरी के संबंध में किवदंती है कि एक बार इन्द्र के पुत्र गन्धर्वसेन के प्रासाद के नीचे से उर्वशी अप्सरा निकली। गन्धर्वसेन ने थूका जो योगात् उर्वशी पर जा गिरा। यह अत्यन्त क्रोधित होकर इन्द्र के पास पहुँची और गन्धर्वसेन के इस प्रमादपूर्ण व्यवहार की शिकायत की। इन्द्र ने गन्धर्वसेन को बुलाकर भला बुरा कहा और बोले कि तू गन्धर्वसेन नहीं बल्कि गर्दभिल्ल है। मैं तुझे श्राप देता हूँ कि तू गर्दभ होगा। श्राप प्रताड़ित गन्धर्वसेन का जन्म अवन्तिका क्षेत्र के चम्पावती नामक नगर में एक कुम्हार के घर हुआ। जब वह बड़ा हुआ तो नित्य अपने स्वामी से कहता कि आप अपने राजा से कहो कि वह अपनी पुत्री का विवाह मुझसे कर दे। गधे की बात का कुम्हार को आश्चर्य हुआ। उसकी क्या बिसात जो ऐसी बात राजा तक पहुँचा सके। किन्तु बात धीरे–धीरे सारी नगरी में फैल गई और राजा के कानों तक भी पहुँची। एक दिन राजा ने रात के समय कुम्हार के घर में छिपे रहकर उस गधे की बात सुनी। राजा को महा आश्चर्य हुआ और उसने इस अदृश्य की प्रेरणा मानकर अपनी पुत्री का विवाह उस गर्दभ रूपी गन्धर्वसेन से कर दिया। कहते है, विवाहोपलक्ष में गन्धर्वसेन ने इस नगरी के चारों ओर ताँबे की एक नगर प्राचीर बनवाई गन्धर्वसेन नित्य रात को मनुष्य रूप हो जाता और सूर्योदय के पूर्व फिर गधा बन जाता। यह क्रम महीनों तक चलता रहा। एक दिन राजपुत्री ने गन्धर्वसेन के मनुष्य रूप में हो जाने पर उसने गधे के शरीर को नष्ट कर दिया। इससे गन्धर्वसेन बहुत क्रोधित हुआ और उसने अपनी पत्नी कहा तुमने यह कार्य बहुत ही बुरा किया। अब तुम बिना पीछे देखे इस चम्पावली की सीमा से अविलम्ब हो जाओं यहाँ अब में भयंकर धूलवृष्टि करूँगा, जिससे सारा नगर दब जायेगा और सब मकान नष्ट भ्रष्ट हो जायेंगे। राजकुमारी तत्काल वहाँ से चल दी।

• महाराजा विक्रमादित्य फैलोशिप •

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ द्वारा स्थापित तथ्यपूर्ण प्रामाणिक शोधकार्य के लिए वर्ष 2022-23 में
भारतीय नागरिकों से उल्लिखित विषयों में से सीनियर और जूनियर फैलोशिप के लिए प्रस्ताव आमंत्रित हैं-

महाराजा विक्रमादित्य सीनियर फैलोशिप प्रत्येक अध्येता राशि रूपये 4,80,000/-

किन्हीं5 विषयों पर सीनियर फैलोशिप प्रदान की जायेगी। अवधि- 1 वर्ष

1. विक्रमादित्य और पुरातत्व
2. विक्रमादित्यकालीन अभिलेखों का विश्लेषणात्मक अध्ययन
3. प्राचीन भारत में लोक प्रशासन
4. विक्रमादित्य की शासन पद्धति के विभिन्न आयाम
5. जैनेत्तर संस्कृत वांग्मय में विक्रमादित्य
6. वृहत्तर भारत में विक्रमादित्य के साहित्यिक साक्ष्य
7. प्राचीन भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान और उनका आधुनिक विज्ञान में योगदान, वैदिक और अगम स्त्रोतों की समीक्षा
8. पुरातत्व और कला संस्कृति में शिवत्व तथा शिवतत्व
9. सूर्य सिद्धांत रहस्य
10. वैदिक समाज में ऊर्जा व्यवस्था और उसके प्रयोग
11. स्वास्थ्य एवं समृद्धि में ज्योतिष विज्ञान के उपयोग
12. पारंपरिक ज्ञान और मानव विज्ञान
13. भारतीय ज्ञान परंपरा का वैश्विक योगदान

महाराजा विक्रमादित्य जूनियर फैलोशिप प्रत्येक अध्येता राशि रूपये 4,32,000/-

किन्हीं 6 विषयों पर जूनियर फैलोशिप प्रदान की जायेगी। अवधि- 1 वर्ष

1. अवंति जनपद में संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य की जनस्तुतियाँ
2. विक्रमादित्ययुगीन आर्थिक स्थिति
3. प्राचीन भारत में (मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में) युगयुगीन चरित्र
4. प्राचीन भारत में यंत्र विज्ञान
5. जैन परंपरा में विक्रमादित्य
6. प्राचीन भारतीय स्थापत्य कला
7. प्राचीन भारतीय मंदिर स्थापत्य

पात्रता

■ **सीनियर फैलोशिप (न्यूनतम आयु 35 वर्ष, 1 अप्रैल 2022 की स्थिति में)** -

1. दर्शन, इतिहास, सामाजिक विज्ञान, मानविकी विधाओं, साहित्य अथवा कलाओं में से किसी एक विषय में पीएच.डी. अथवा 2. इतिहास, शिक्षा, संस्कृति, दर्शन या भारतीय साहित्य में अपने योगदान के द्वारा प्रतिष्ठित विद्वान अथवा 3. विश्वविद्यालयीन/महाविद्यालयीन प्राध्यापक अथवा राष्ट्रीय/राज्य स्तरीय ख्याति प्राप्त विद्वान या ऐसे लेखक, संपादक, पत्रकार जिनकी ऊपर संदर्भित विषयों पर दो से अधिक पुस्तकें प्रकाशित या चर्चित हो चुकी हैं, पात्र होंगे। 4. फैलोशिप संबंधित क्षेत्र में विशेष उपलब्धि अर्जित करने अथवा विशेषीकृत अनुसंधान का अनुभव रखने वाले आवेदक को प्राथमिकता दी जायेगी।

■ **जूनियर फैलोशिप (अधिकतम आयु 50 वर्ष, 1 अप्रैल 2022 की स्थिति में)** -

1. दर्शन, इतिहास, सामाजिक विज्ञान, मानविकी विधाओं, साहित्य अथवा कलाओं में से किसी एक विषय में पीएच.डी. उपाधिधारी भी आवेदन कर सकते हैं अथवा 2. कोई युवा/उदीयमान स्तरीय लेखक, पत्रकार, जिनके लेख चर्चित हो चुके हों, भी पात्र होंगे। अथवा 3. संबंधित क्षेत्र में विशेष उपलब्धि अर्जित करने अथवा विशेषीकृत अनुसंधान का अनुभव रखने वाले आवेदक को प्राथमिकता दी जायेगी।

आवेदन-पत्र का प्रारूप

1. नाम 2. स्थायी पता 3. जन्म तिथि 4. जन्म स्थान 5. पासपोर्ट आकार के दो फोटोग्राफ 6. भारत में निवास की अवधि 7. रोजगार की स्थिति 8. शोध प्रस्ताव (सीनियर- लगभग 2500-3000 शब्दों में कम्पोज किया हुआ, जूनियर- लगभग 500-1000 शब्दों में कम्पोज किया हुआ) 9. फैलोशिप की अवधि में किये जाने वाले कार्य का शीर्षक एवं विवरण 10. सम्बन्धित क्षेत्र में योगदान एवं अनुभव 11. ऐसे दो सम्मानित विद्वानों के संदर्भ (नाम एवं पता) जिन्हें नामांकित व्यक्ति की योग्यता/कार्य की जानकारी हो।

आवेदन-पत्र भेजने की अंतिम तिथि- 30 अप्रैल 2023

आवेदक को अपना आवेदन 30 अप्रैल 2023 तक निदेशक, महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, 1 उदयन मार्ग, उज्जैन- 456010, दूरभाष- 0734-2521499 अथवा सचिव, महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, रवीन्द्र भवन परिसर, भोपाल- 462003, दूरभाष- 0755-2990794, 2660563, 2660407, 2660361 को आवश्यक रूप से भेजे जायें। अधिक जानकारी एवं फैलोशिप से जुड़े नियम व शर्तों के लिए वेबसाइट पर जायें।

स्वराज संस्थान संचालनालय
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन
E-Mail : vikramadityashodhpeeth@gmail.com, **Website** : www.mvspujjain.com, www.swarajsansthan.org

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.
आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com